निबन्ध पर 'निबन्ध'

कालू राम शर्मा

स्कूल में लिखना सीखने की ढंग से शुरुआत हुई भी नहीं थी कि निबन्ध लेखन मेरे पीछे कुछ इस कदर पड़ गया कि उच्च कक्षाओं तक इसने पीछा नहीं छोड़ा। मुझे याद है, जब मैं कक्षा पाँचवीं में पहुँचा ही था कि 'गाय' पर निबन्ध लेखन करवाया गया। गाय को लेकर निबन्ध शिक्षक द्वारा गाइड में से बोर्ड पर लिखा गया और उसे हम बच्चों को कॉपी में उतारने को कहा गया। सच कहूँ तो बोर्ड पर लिखे निबन्ध को हम ठीक से कॉपी में उतार भी नहीं पा रहे थे। जैसे-तैसे जब आधा-अधूरा निबन्ध स्कूल की रफ कॉपी में उतार लिया तो फिर उसे घर पर (गृहकार्य) फेयर कॉपी में उतारने को कहा गया था। यह हमारे लिए और भी मुश्किल काम था। मुझे याद है कि मैंने और मेरे दोस्तों ने कई-कई पन्ने फाड़े मगर शिक्षक के चाहे अनुसार निबन्ध फेयर कॉपी में उतार नहीं पा रहे थे। हो यह रहा था कि जब हम निबन्ध को उतारते तो एक के बाद एक गलतियाँ होती जातीं। खूब सारी काटा-पीटी होती और इसका परिणाम होता पन्ने-दर-पन्नों को फाड़ना। दरअसल, फेयर कॉपी में निबन्ध लिखने के पूर्व शिक्षक ने हमें हिदायतें दी थीं कि निबन्ध साफ-स्वच्छ अक्षरों में, बिना काटा-पीटी के लिखना है। हालाँकि, हम तो निबन्ध की नकल ही करना चाह रहे थे मगर लिखे हुए को लिखने का हुनर भी हममें विकसित नहीं हो पाया था तब तक।

कॉपियों की जँचाई का दौर

अगला कदम था शिक्षक के द्वारा फेयर कॉपी की जँचाई। पूरी कक्षा की

कॉपियाँ इकट्ठी की जाने लगीं। हर कोई चाहता था कि उसकी कॉपी गड्डी में सबसे नीचे रहे, ताकि किसी तरह से कॉपी की जँचाई से बचा जा सके। जब शिक्षक कॉपियाँ जाँचते तो लाल स्याही के पेन इस्तेमाल करते। साथ ही कॉपी जाँचने के दौरान हर बच्चे को पास बुलाते और बुरी तरह डाँटते। किसी की कॉपी दरवाज़े के बाहर फेंक देते तो किसी में क्रॉस का निशान लगाते। यह क्रॉस 440 वोल्ट के झटके से कम नहीं होता जो हमारे आत्मविश्वास और अस्मिता को चकनाचूर कर देता। मेरी बारी आई तो शिक्षक ने कई-कई गोले लगाए और आखिरकार झल्लाकर क्रॉस लगा दिए और कहा कि दूसरी कॉपी बनाओ और उसमें ढंग से निबन्ध को उतारो। मैं मुँह लटकाकर अपनी जगह पर बैठ गया। हमें यह अहसास हो गया था कि हम निबन्ध की भलीभाँति नकल भी नहीं कर पाए।

निबन्ध की रटाई का दौर

शिक्षक की अगली चेतावनी थी कि इस निबन्ध को अच्छी तरह से याद कर लेना। शिक्षक ने यह भी जोड़ा कि जैसा लिखा है वही याद करना है। यह तो हमारे लिए और भी दुष्कर और असम्भव था। अब हम गाय के निबन्ध का रट्टा लगाने में जुट गए। उल्लेखनीय बात यह थी कि हम निबन्ध रट तो लेते मगर जब परीक्षा में लिखने की बारी आती तो सब कुछ नदारद हो जाता।

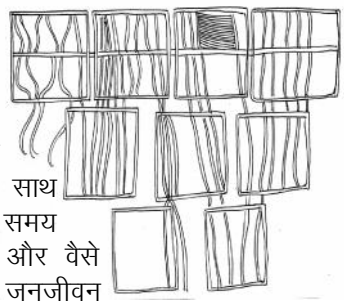

मेरे घर में भी गाय थी जिसके साथ मेरा बहुत समय बीतता था और वैसे भी गाँव के जनजीवन में गाय बड़ी गहराई से शामिल होती है। मगर इसके बावजूद सच कहूँ तो उस निबन्ध में गाय को लेकर मेरे अनुभव और समझ का अंश-मात्र भी शामिल नहीं हो पाता था।

निबन्ध और भाषाओं के जंजाल

पाँचवीं कक्षा से निबन्ध लेखन की परम्परा ने कुछ इस तरह ज़ोर पकड़ा कि कक्षा-दर-कक्षा निबन्धों की संख्या और जटिलता बढ़ती गई मगर हमारी निबन्ध लिखने की क्षमता में कोई इज़ाफा नहीं हो पाया। अब तक तो हम बोर्ड पर लिखे हुए को ही ठीक से उतार नहीं पा रहे थे। और छठी से शुरुआत हो गई एक नई परम्परा - जिसमें शिक्षक बोर्ड पर लिखने के बदले बोलते थे और हमें लिखना होता था। वे वाक्य-दर-वाक्य धाराप्रवाह बोलते जाते। सुनकर लिखने में हमारा दिमाग और हाथ इतने अभ्यस्त नहीं हो पाए थे कि जो बोला जा रहा है उसे फुर्ती से लिख सकें। इस पूरी प्रक्रिया में हम शिक्षक का मुँह ताकते रहते और कभी-कभार हिम्मत करके फिर से दोहराने को कहते। कभी तो शिक्षक का मूड ठीक होता तो निबन्ध के उस वाक्य को दोहरा देते और कई बार वे डाँटना शुरू कर देते। डाँट के

डर से हम शिक्षक से वाक्य को दोहराने की गुज़ारिश करने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते थे। इस सबके बावजूद अगर कक्षा में कोई पूरा निबन्ध लिख लेता तो उसकी कॉपी पूरी कक्षा में घूमती रहती।

छठवीं में एक और समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई। हम मालवी बोलने वालों के लिए हिन्दी स्कूल और पाठ्य पुस्तकों की भाषा थी। अब छठी कक्षा में दो और भाषाओं की किताबें - अँग्रेज़ी और संस्कृत भी शामिल हो गईं और शामिल हो गए इन भाषाओं के निबन्ध। हिन्दी जैसे विषय में जहाँ हम थोड़ा-बहुत पढ़ना (शब्दों और वाक्यों की पहचान) और लिखना (लिखे हुए को लिखना) सीख ही पाए थे, वहीं अँग्रेज़ी में वर्णमाला के अक्षरों को पहचानना भी अभी सम्भव नहीं हुआ था तो निबन्ध लिखना तो कोसों दूर की बात थी। इसी प्रकार से संस्कृत में भी समस्या कमोबेश अँग्रेज़ी जैसी तो नहीं मगर उसकी टक्कर की ही थी। संस्कृत की लिपि भले ही देवनागरी हो मगर उसकी बनावट में क्लिष्टता होती है। इस वजह से संस्कृत को पढ़ना और लिखना, दोनों ही स्कूली स्तर पर हमारे लिए समस्याप्रद था।

अनुभवों की जगह कहाँ?

आगे की कक्षाओं में निबन्ध के विषय बदलने लगे। उन्हीं में एक निबन्ध मेले पर होता था। मगर मेले के बारे में निबन्ध वही लिखना पड़ता जो किताब या गाइड में दिया होता था। इस प्रकार के प्रत्येक निबन्ध को प्रस्तावना, विषय-वस्तु, लाभ-हानि, क्यों होता है मेला, उपसंहार आदि के बँधे-बँधाए फॉर्मेट में ही लिखना होता था। यह बाध्यता कभी भी निबन्ध लेखन में प्रेरणा नहीं बन पाई। बचपन में मेले में खूब जाते, वहाँ खूब मज़ा आता था। उन दिनों मेला ही एक ऐसी जगह होती थी जहाँ फिल्म देखना, जादू के करतब देखना, मिठाई खाना और खिलौने खरीदने का आनन्द मिलता था। इतना ही नहीं, मेले में जाने के कई दिनों पहले तैयारियाँ शुरू हो जातीं। दोस्तों के बीच मेले की ही चर्चा प्रमुखता से छाई रहती। मगर ये सब बातें मेले वाले निबन्ध में लिखने की ज़रा भी गुंजाइश नहीं होती थी।

उल्लेखनीय है कि मिडिल और हाईस्कूल की कक्षाओं की परीक्षा में निबन्ध वाले प्रश्न में चार विकल्प होते थे जिनमें से किसी एक विषय

पर निबन्ध लिखना होता था। वैसे यह बताना प्रासंगिक होगा कि परीक्षा में निबन्ध के सबसे ज़्यादा अंक होते थे। सबसे अधिक अंक हासिल कर पाने की जुगत निबन्ध के लिए अधिक सधा हुआ लेखन करने को छात्रों और शिक्षकों, दोनों को मजबूर करती थी। शिक्षक हमें कोई दो निबन्ध याद करने को कहते। हाँ, शिक्षक हमारे ऊपर तथाकथित मेहरबानी यह बताकर करते कि फलाँ दो निबन्ध कण्ठस्थ कर लेना। और हम उन निबन्धों को कण्ठस्थ करने की कोशिश में जुटे रहते। वे हमें कुछ और चालाकियाँ भी बताते। शिक्षक ने हमें बताया कि 15 अगस्त पर निबन्ध याद किया है और अगर परीक्षा में राष्ट्रीय त्यौहार आ जाए तो हम 15 अगस्त वाला निबन्ध लिख सकते हैं। या कि किसी महान व्यक्ति पर निबन्ध पूछा जाए और हमने जवाहर लाल नेहरू को रटा है तो उसे लिख दें। तो हमारी पूरी की पूरी ऊर्जा इसी उहापोह में नष्ट होती रहती कि किसी तरह से परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकें।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से परे

परीक्षा की चक्करघिन्नी में हम कुछ इस तरह से फँसे रहते कि परीक्षा के कमरे में घुसने के पहले तक तोता-रटन्त करते रहते। जब पेपर हाथ में आता और निबन्ध लिखने बैठते तो परीक्षा के आतंक के मारे हम कण्ठस्थ किया हुआ भी भूलने लगते। दिक्कत यह थी कि लिखने का हुनर तो हम में विकसित हो ही नहीं पाया था। दूसरा यह कि अपने विचारों को लिखने के दरवाज़े बन्द थे और इन्हें खोलने के अवसर परीक्षा की वजह से ही शायद नहीं मिल पाए। ऐसा नहीं था कि विचार नहीं करते थे। मगर जो विचार करते उसका पढ़ाई वगैरह से कोई लेना-देना ही नहीं था। इसलिए निबन्ध तो क्या कहीं और भी उन निजी विचारों की अभिव्यक्ति के अवसर ही नहीं होते थे। दूसरी समस्या थी गलतियों से डर। गलती करना एक प्रकार का अपराध माना जाता था। बोलने में गलती, पढ़ने में गलती, लिखने में गलती... ये सब भेजे में इस तरह घुसा दी जा चुकी थीं कि बच्चों को गलतियों के पुतले मानने लगे थे।

निबन्ध लेखन के मायने क्या हैं?

दरअसल, निबन्ध लेखन से अपेक्षाएँ क्या हैं? आखिर स्कूली स्तर पर निबन्ध लेखन से बच्चों में किन गुणों का विकास करना चाहते हैं? ये सवाल निबन्ध लेखन के दायरे में शामिल होते नहीं दिखते। आखिर 'निबन्ध लेखन क्या है?' इस पर भाषा शिक्षकों और प्रशिक्षकों के बीच विमर्श होता दिखाई नहीं देता है। दूसरे स्तर के प्रश्न पर विचार करना और भी ज़रूरी है। बच्चा जैसे-तैसे थोड़ा-बहुत लिखना सीख जाता है कि निबन्ध लेखन प्रारम्भ हो जाता है। उसके पूर्व निबन्ध लेखन की तैयारी की कोई प्रक्रिया आखिर क्या हो?

दरअसल, निबन्ध लेखन का एक

प्रमुख मकसद यह है कि बच्चे अपने निजी विचारों को व्यक्त कर सकें। गिजु भाई के अनुसार "जो कोई भी अपने हृदय के विचारों को व्यवस्थित ढंग से लिख सकता है उसे मैं निबन्धकार या लेखक मानता हूँ।" आगे गिजु भाई कहते हैं कि "निबन्ध में आन्तरिक विचार एक वस्तु है और विचारों की स्पष्टता दूसरी आवश्यक वस्तु है।" विचारों की स्पष्टता का अर्थ है चौकस विचार करना। विचारों को एक ताने-बाने में गूँथना, यथाक्रम सजावट, सन्तुलित-सुसंगति भी महत्वपूर्ण है। तो सवाल यह उठता है कि क्या हमारे स्कूली पाठ्यक्रम में बच्चों को निबन्ध के ज़रिए अपने आन्तरिक विचारों को व्यक्त करने के अवसर मिलते हैं? अब तक की चर्चा में यह बात प्रमुखता से उभरकर आती है कि स्कूलों में निबन्ध के नाम पर महज़ किताबी जानकारी को हूबहू लिखने पर ज़ोर अधिक है। लिखने की तैयारी की कोई जगह नहीं होती है जो निबन्ध लेखन के पूर्व होनी चाहिए।

अभाव सहज अभिव्यक्ति का

इसे विडम्बना कहें कि बच्चा जब स्कूल में आता है तो प्रारम्भ से ही कक्षा में इस तरह से उलझाकर रखा जाता है कि उसे अपने आन्तरिक विचारों को मौखिक रूप से भी व्यक्त करने के अवसर नहीं मिलते। मौखिक अवसर से तात्पर्य है अपनी कक्षा के साथियों के साथ 'बातचीत'। शिक्षक की बच्चों के साथ सहज और सौहार्दपूर्ण माहौल में बातचीत, चर्चा आदि। कक्षा में बच्चों का आपस में बातचीत करना अनुशासनहीनता की श्रेणी में डाल दिया जाता है। स्कूलों में बच्चे किताबों में सिर घुसाकर रहें यही एक अच्छी कक्षा की निशानी मान ली जाती है। दरअसल, उसे अपने साथियों-सहेलियों के साथ बातचीत करने, किसी घटना पर टिप्पणी करने के अवसर मिलने चाहिए ताकि वह अपने विचारों को व्यक्त कर सके और दूसरों के विचारों को सुनकर उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सके। दूसरे स्तर पर आता है 'पढ़ना'। पढ़ने से अर्थ है सार्थक और अर्थपूर्ण पढ़ना। यह लेखन की पूर्व-तैयारी का एक चरण है। हमें यह भी देखना होगा कि जब बच्चा लिखना सीख रहा है तो उसे अपने मन की बात लिखने के कितने मौके मिलते हैं। ऐसे कितने अवसर कक्षा में उपलब्ध कराए जाते हैं जब पुस्तकीय लेखन से हटकर उसे अपने विचार और अनुभव, अपनी शैली में व्यक्त करने होते हैं। यह प्रोत्साहित करता है मौलिक लेखन के ज़रिए स्वयं के आन्तरिक विचारों को व्यक्त करने को।

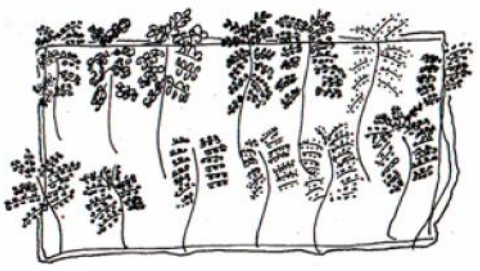

एक अनुभवः शिक्षकों के साथ

निबन्ध लेखन जैसी ही प्रक्रिया को शिक्षकों के साथ करके देखने का मेरा अनुभव हालिया है। डी.एड. (दूरस्थ शिक्षक प्रशिक्षण) को लेकर शिक्षक प्रशिक्षण का एक कार्यक्रम छत्तीसगढ़ राज्य में चलाया जा रहा है। पूरे राज्य से चुने गए प्रशिक्षकों (मेंटर्स) का चयन कर उन्मुखीकरण किया गया। शाला समुदाय विषय के एक सत्र में प्रशिक्षकों को अपने अनुभव लिखने को कहा गया। सत्र था - जाति व्यवस्था। शिक्षकों को कहा गया कि वे अपने बचपन के किसी ऐसे दोस्त के बारे में अपने अनुभव लिखें जो दलित समुदाय से हों। पहले-पहल तो शिक्षकों ने दिलचस्पी नहीं दिखाई। उनसे कहा गया कि वे अपनी भाषा में अपने स्वयं के अनुभव लिखें। उन अनुभवों को साझा करें पूरी कक्षा में। इसमें सही-गलत जैसा कुछ भी नहीं है। उन्हें कोई पूर्व-निर्देश भी नहीं दिए गए थे। लिखने के लिए तकरीबन एक घण्टे का समय दिया गया। सभी प्रशिक्षु शिक्षक कुछ समय सोचने के बाद लेखन कार्य में जुट गए। एक घण्टे का समय कम पड़ता जान हमने इस काम को आधा घण्टा और दिया। शायद निबन्ध लेखन को लेकर छात्र जीवन में उपजा खौफ उन पर अब भी हावी था। माहौल परीक्षा-सा ही बन गया था। शिक्षकों को अब भी लग रहा था कि कुछ लिखना तो बाकी ही रह गया।

इस लेखन का कोई ढाँचा तय नहीं किया गया था और यह बात पहले ही स्पष्ट कर दी गई थी कि इन लेखों को परीक्षण या अंक प्राप्त करने की प्रक्रिया से नहीं गुज़रना है। कक्षा का ताना-बाना कुछ इस प्रकार से रचा गया था कि इसमें हम किसी के लिखे हुए पर कोई टिप्पणी नहीं करेंगे। हम उन विचारों को सुनेंगे जो उन्होंने व्यक्त किए हैं।

अगले दिन सभी शिक्षक साथियों को दूसरे शिक्षक-शिक्षिका का लेख पढ़ने को दिया गया। अपेक्षा थी कि उन्हें लेख में क्या अच्छा लगा, यह सभी को बताएँ। यह बातचीत कोई दो घण्टे तक चली। शिक्षकों ने अपने निजी विचार बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ रखे। शिक्षकों की कक्षा जीवन्त हो उठी थी। आखिर में, यह तय किया गया कि इन अनुभवों को सहेजकर

ऐसे ही एक अन्य प्रशिक्षण में प्रशिक्षु शिक्षकों द्वारा लिखे गए लेखों में से दो लेख हम यहाँ बतौर बानगी दे रहे हैं।

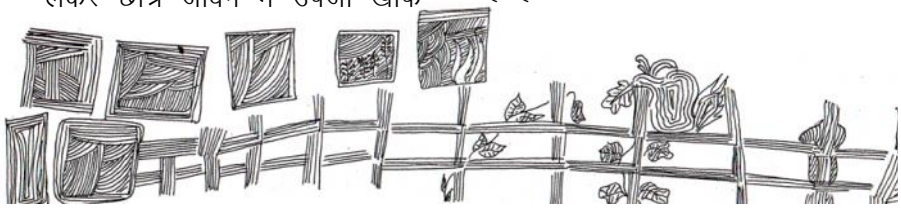

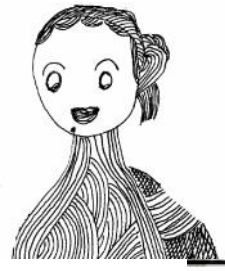

मेरी दोस्ती

बात उस समय की है जब मेरा कक्षा नौवीं में एडमीशन हुआ था। मिडिल की पढ़ाई मैंने उसी शाला में पूरी की थी पर मिडिल स्कूल सुबह की पाली में लगता था। अब मैं हाई स्कूल की छात्रा थी पर हाई स्कूल में सबसे जूनियर क्लास में थी। इसलिए थोड़ी-थोड़ी डरी भी थी। स्कूल खुले कुछ ही दिन हुए थे। अभी भी एडमीशन चल रहे थे। अचानक हमारी कक्षा में एक नई लड़की आई। वह भी डरी-डरी-सी थी। पूरी कक्षा में कोई भी लड़की ऐसी नहीं थी जो उससे बात करती। पर सब आपस में उसके बारे में बातें करते थे। उसका रहन-सहन बहुत अच्छा था। साफ-सुथरी यूनिफॉर्म, वह भी प्रेस की हुई, पहनती थी। बाल उसके छोटे-छोटे थे जो आँखों के सामने आते रहते थे। वह दिखने में बहुत ही मासूम और भोली लगती थी। मुझे उससे बात करने का बहुत मन करता था पर क्लास की लड़कियाँ उसके बारे में बातें करती थीं कि वह बड़ी घमण्डी है, किसी से बात नहीं करेगी। इस डर से मैं भी उससे बात नहीं करती थी। पर 5वें दिन मेरा मन नहीं माना, मुझे लगा कि मुझे उससे बात करनी चाहिए। अगर वह बात नहीं करेगी तो अलग बात पर मुझे कोशिश करनी चाहिए। ऐसा सोचकर मैं रिसेस में उसकी सीट के पास जाकर बैठ गई और पूछा कि "तुम्हारा नाम क्या है?" उसने बड़े अच्छे से अपना नाम बताया, "अपर्णा।" फिर उसने भी मुझसे मेरा नाम पूछा। इस प्रकार बातों का सिलसिला चल पड़ा। बाकी लड़कियाँ मुझे आश्चर्य से देख रहीं थीं कि कैसी है, पहले से बात कर रही है। पर ऐसी कोई बात थी जो मुझे उसकी ओर आकर्षित कर रही थी। इस प्रकार जब मैंने दोस्ती करने के लिए अपना एक कदम आगे बढ़ाया तो वह भी पीछे नहीं हटी। तब से आज तक का दिन है कि हम अच्छे दोस्त हैं। उस समय नौवीं कक्षा में विषय का बँटवारा हो जाता था। वह गणित तथा मैं जीव विज्ञान में थी। हमारे पाँच विषय होते थे - हिन्दी, सामान्य अँग्रज़ी, फिज़िक्स, रसायन शास्त्र तथा जीव विज्ञान/गणित। हमारे चार विषय कॉमन थे पर एक विषय के लिए हमें अलग होना पड़ता था। हम साथ-साथ कक्षा में बैठते थे। रिसेस में टिफिन भी साथ-साथ करते और ढेरों बातें करते। मुझे जीव विज्ञान अच्छा नहीं लगता था, मुझे भी गणित विषय में रुचि थी। पर उस समय की सोच थी कि लड़के गणित और लड़कियाँ जीव विज्ञान पढ़ती हैं। इसलिए मेरे भाई को गणित और मुझे जीव विज्ञान दिलाया गया। रुचि नहीं होने के कारण तिमाही परीक्षा में मैनें जीव विज्ञान में बहुत ही कम अंक अर्जित किए। मेरा आत्म विश्वास गड़बड़ा गया। उस समय मेरी दोस्त ने मुझे ढाढ़स बँधाया। गणित विषय की होने के बावजूद उसने मुझे बायोलॉजी कैसे पढ़ना चाहिए तथा उसके उत्तर किस प्रकार लिखने चाहिए, बहुत ही अच्छी तरह से समझाया। मैंने उसकी बातों को गाँठ बाँध लिया। फिर मुझे कभी जीव विज्ञान से डर नहीं लगा और मैं हमेशा अच्छे अंक लाती रही।

- मनीषा वर्मा

मैं और मेरा दोस्त

मैं और मेरा दोस्त देवाशीष दत्ता एक मध्यमवर्गीय परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। हमारी दोस्ती कक्षा नवमीं में उसके प्रवेश लेने के दिन से ही प्रारम्भ हुई। हमारी दोस्ती का कारण मेरे पिताजी एवं उसकी माताजी का एक ही विभाग में काम करना था। हम दोनों के घर भी लगभग पास-पास ही थे। अब हम दोनों में एक समानता यह थी कि स्कूल से जो भी कार्य सौंपे जाते थे, उसे हम दोनों एक साथ बैठकर पूरा करते थे। साथ रहते-रहते दोनों एक-दूसरे की पारिवारिक पृष्ठभूमि से भी परिचित हो गए थे। हम दोनों के अभिभावकों की कमियाँ एक-दूसरे को अच्छे से पता होना, एक-दूसरे के लिए मददगार साबित हुआ। हमने गर्मी की छुट्टियों में कहीं बाहर घूमने न जाकर हमारे किरायेदार अंकल (तिवारी जी) की सलाह पर छुट्टियों की अवधि में मुंशीगीरी का काम सम्हाल लिया। अब हम दोनों के लोकल होने के कारण हमें मज़दूर भी जल्द ही मिल जाया करते थे। मज़दूरों से अच्छा व्यवहार करने के कारण मज़दूरों में जल्दी ही हम दोनों लोकप्रिय हो गए। जो कार्य हमें सौंपे जाते थे, उसे समय से पहले ही पूर्ण किया करते थे। साथ ही कार्य के बदले जेब खर्च व अन्य कार्यों के लिए पैसों का इन्तज़ाम हो जाया करता था। और इन पैसों से घर पर भी माता-पिता की कुछ मदद किया करते थे। मैंने इस समय दो बातें उससे सीखीं:- (1) कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता, काम करना अच्छा है, बस काम सही होना चाहिए। और, (2) कोई भी काम के बदले जो भी पैसे प्राप्त होते थे उससे हम स्वावलम्बी तो बनते ही थे, उससे हम अपने माता-पिता की भी आर्थिक रूप से मदद कर पाते थे।

कुछ दिनों पश्चात्, उसके पिताजी जो कि सेना में थे, शहीद हो गए। उस समय हम दोनों दोस्तों ने उसकी माताजी की खूब देख-भाल की, व अच्छे से ख्याल रखा। अब चूँकि उनकी माताजी भी नौकरी में थीं, उनका कार्य भी हम दोनों मिलकर खाली समय में कर दिया करते थे।

कक्षा ग्यारहवीं में हम दोनों ने साइंस (बायोलॉजी) का विषय चुना था। इसमें हम दोनों की रुचि भी बहुत थी। उसको भौतिकी अच्छे से समझ आती थी तो मुझे बायोलॉजी और रसायन शास्त्र। हम दोनों एक-दूसरे की मदद से सभी विषय आपस में समझ लेते थे। इससे हमें सभी की मदद करने के लिए हमेशा तत्पर रहने की शिक्षा मिली। और मैं आज भी अपने छात्रों की आर्थिक और अन्य रूप से मदद करता हूँ।

- लाल मोहम्मद अंसारी

रखा जाना चाहिए।

शिक्षकों को यह अनुभव हुआ कि उन्होंने जो कुछ भी व्यक्त किया है वह सही-गलत के दायरे से परे है। ज़ाहिर है कि इस प्रकार के कार्य में सही-गलत ठहराना मकसद भी नहीं था। सो, सभी के अपने अनुभव बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत हुए थे, यही इसकी खूबी थी।

बहरहाल, यह भाषा की कक्षा नहीं थी मगर हमने शिक्षकों के विचारों को समझने के मकसद से इस कार्य को अंजाम दिया था।

दरअसल, इस प्रकार के अवसर शिक्षक साथियों को प्रशिक्षणों में भी उपलब्ध नहीं हो पाते। शिक्षक प्रशिक्षण के सन्दर्भ में कोठारी आयोग में एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इशारा किया गया है जो आज तक मुख्यधारा की शिक्षा में अमल में नहीं आ सका। कोठारी आयोग के अनुसार "...अध्यापक पर जब तक किन्हीं अन्य तत्वों का प्रभाव न पड़े तब तक वह अध्यापन में उन्हीं पद्धतियों का अनुसरण करता जाता है जिनका अनुसरण उसके प्रिय गुरुजन किया करते थे और यूँ वह अध्यापन की परम्परागत प्रणाली को ही आगे बढ़ाता है।"

इसे विडम्बना कहें कि शिक्षकों को उन अनुभवों को अर्जित करने और प्रक्रियाओं से गुज़रने के अवसर प्रशिक्षणों में कम मिल पाते हैं जिनसे उन्हें बच्चों को गुज़ारना है। इस प्रकार के कक्षाई मसलों को प्रशिक्षणों में स्थान दिया भी जाता है तो वे निर्देशों के कर्मकाण्ड में उलझकर रह जाते हैं।

उपसंहार में यही कहा जा सकता है कि भाषा में निबन्ध लेखन की दकियानूसी परम्परा से निजात पाने के लिए कुछ सरल से कदम उठाने की आवश्यकता है। लिखने से जुड़ी दक्षताओं को पहचानने और उन्हें विकसित करने में निबन्ध की भूमिका सकारात्मक और सहयोग की होनी चाहिए, न कि ऐसी कि लेखन से मुँह फेरना पड़े।

कालू राम शर्मा: विज्ञान शिक्षण एवं फोटोग्राफी में रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, उत्तराखण्ड में कार्यरत हैं। देहरादून में निवास।

सभी चित्र: रिनचिन: बच्चों व बड़ों के लिए कहानी लिखती हैं। शौकिया चित्र बनाती हैं। भोपाल में रहती हैं।

सज्जा: कनक शशि: भोपाल में रहती हैं और स्वतंत्र कलाकार के रूप में पिछले एक दशक से बच्चों की किताबों के लिए चित्रांकन कर रही हैं।